ज्ञानी की परिणति

णमोकार मंत्र पढ़ने से कभी किसी धर्मात्मा की रक्षा करने देवता आ गये थे ह्न यह पौराणिक आख्यान सत्य हो सकता है, इसमें शंका करने की कोई आवश्यकता नहीं है; पर इससे यह नियम कहाँ से सिद्ध होता है कि जब-जब कोई संकट में पड़ेगा और वह णमोकार मंत्र बोलेगा; तब-तब देवता आवेंगे ही, अतिशय होगा ही।

शास्त्रों में तो मात्र जो घटा था, उस घटना का उल्लेख है। उसमें यह कहाँ लिखा है कि ह्न ऐसा करने से ऐसा होता ही है; यह तो इसने अपनी ओर से समझ लिया है; अपनी इस समझ पर भी इसको विश्वास कहाँ है ? होता तो आकुलित क्यों होता, भयाक्रान्त क्यों होता ?

ज्ञानी भी णमोकार मंत्र पढ़ रहा है, शान्त भी है; पर उसकी शान्ति का आधार णमोकार मंत्र पर यह भरोसा नहीं कि हमें बचाने कोई देवता आवेंगे। णमोकार मंत्र तो वह सहज अशुभभाव से तथा आकुलता से बचने के लिये बोलता है। उसकी निर्भयता का आधार तो 'क्रमबद्धपर्याय' की पोषक यही पंक्तियाँ हैं कि ह्न

हमकौं कछु भय ना रे .....

वह इस आशा में निर्भय नहीं है कि देवता बचा लेंगे; इस आधार पर निर्भय है कि मरना होगा तो मरूँगा ही, कोई बचा नहीं सकता और नहीं मरना होगा तो कोई मार नहीं सकता। मरने का समय आ गया होगा तो कोई टाल नहीं सकता और नहीं आया होगा तो बलात् कोई ला नहीं सकता। यदि इसी निमित्त से मरना होगा तो कोई बदल नहीं सकता और इस निमित्त से नहीं मरना होगा तो कोई मार नहीं सकता।

उसने द्रव्यस्वभाव के समान पर्यायस्वभाव को भी अच्छी तरह जान लिया है। जान लियो संसार ह्न का यही भाव है। उसी के आधार पर वह निश्चिंत है।

न उसे द्रव्यस्वभाव में परिवर्तन की कोई इच्छा है और न पर्यायों के परिवर्तन में दखल करने का कोई आग्रह है। थोड़ी बहुत व्याकुलता भी दिखाई दे तो समझना चाहिये कि यह चारित्र की कमजोरी है, श्रद्धान का दोष नहीं; क्योंकि उसकी श्रद्धा तो निर्दोष द्रव्यस्वभाव का आश्रय लेकर पूर्ण निर्दोष हो गई है ।

ह्न क्रमबद्धपर्याय, पृष्ठ-100

वीतराग-विज्ञान

वीतराग-विज्ञान ही, तीन लोक में सार।
वीतराग-विज्ञान का, घर-घर होय प्रसार।।

वर्ष : 23 267 अंक : 3

प्रवचनसार पद्यानुवाद

ज्ञेयतत्त्वप्रज्ञापन महाधिकार

ज्ञान-ज्ञेयविभाग अधिकार

आतमा ज्ञानात्मक अनद्रव्य में मध्यस्थ हो।
ध्यावे सदा ना रहे वह नित शुभ-अशुभ उपयोग में।।१५९।।
देह मन वाणी न उनका करण या कर्ता नहीं।
ना कराऊँ मैं कभी भी अनुमोदना भी ना करूँ।।१६०।।
देह मन वच सभी पुद्गल द्रव्यमय जिनवर कहे।
ये सभी जड़ स्कन्ध तो परमाणुओं के पिण्ड हैं।।१६१।।
मैं नहीं पुद्गलमयी मैंने ना बनाया हैं इन्हें।
मैं तन नहीं हूँ इसलिए ही देह का कर्ता नहीं।।१६२।।
अप्रदेशी अणु एक प्रदेशमय अर अशब्द हैं।
अर रूक्षता-स्निग्धता से बहुप्रदेशीरूप हैं।।१६३।।
परमाणु के परिणमन से इक-एक कर बढ़ते हुए।
अनंत अविभागी न हो स्निग्ध अर रूक्षत्व से।।१६४।।
परमाणुओं का परिणमन सम-विषम अर स्निग्ध हो।
अर रूक्ष हो तो बंध हो दो अधिक पर न जघन्य हो।।१६५।।

ह्न डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल

ज्ञानी की उच्छिष्ट भोगों में अरुचि

पूज्यपाद आचार्य श्री देवनन्दि के प्रसिद्ध ग्रन्थ इष्टोपदेश के 30 वें श्लोक पर हुए आध्यात्मिकसत्पुरुष श्री कानजीस्वामी के अध्यात्मरसगर्भित प्रवचनों का संक्षिप्त सार यहाँ दिया जा रहा है। मूल श्लोक इसप्रकार है ह्न

भुक्तोज्झिता मुहुर्मोहान्मया सर्वेऽपि पुद्गला: ।
उच्छिष्टेष्विव तेष्वद्य मम विज्ञस्य का स्पृहा ।।30।।

मोह के कारण समस्त पुद्गल मैंने बारम्बार भोगे और छोड दिये, उच्छिष्ट (वमन) जैसे पदार्थों में अब मेरे जैसे भेदज्ञानी को क्या स्पृहा हो अर्थात् मुझे अब इन भोगों की इच्छा नहीं है।

(गतांक से आगे...)

भगवान आत्मा सच्चिदानंद स्वयं महाप्रभु है; किन्तु अज्ञानवश इस जीव ने परपदार्थों में मोह करके प्रत्येक वस्तु को वारंवार भोगा और छोड़ा है, अत: अब उन भोगे हुए पदार्थों को क्या भोगना ? यह तो कुत्ते के कार्य के समान है।

जैसे सड़क चलते हुये रास्ते में अनेक वृक्षों की छाया आती है; किन्तु उसमें से पार होनेवाला मनुष्य एक ही है। उसीप्रकार आत्मा अनादि-अनंत शाश्वत विराजमान है, उसमें अनेक शरीरों की छाया आती है और चली जाती है, लेकिन उन सबमें आत्मा एक शाश्वत विराजमान है। इसप्रकार अनेक शरीरों को मैंने अनंतबार भोगा और छोड़ा है, अब और पदार्थों की क्या चाह करना ?

शरीरादि में अपनापन मानना, शरीर में दु:ख-प्रतिकुलता होने पर मुझे भी दु:ख होता है ह्न ऐसी मान्यता मिथ्यादृष्टि जीव करता है।

जो ज्ञानी अपने अनाकुल आनंद की निरंतर चाह करता है, भावना करता है और अपने आनन्द का अनुभव करता है ह्न ऐसे ज्ञानी जीव को शरीरादिमें भोग की भावना कैसे हो सकती है ? छियानवें हजार रानियों के भोग में पड़े हुए सम्यग्दृष्टी चक्रवर्ती को भी शरीर और भोगादि की इच्छा नहीं है। अतरंग से ही भोगादि के प्रति रुचि का अभाव हुआ है। जैसे डंडा मारने से जिसकी कमर टूट गई हो ह्न ऐसी बिल्ली धीरे-धीरे चलती है, उसीप्रकार धर्मी जीव की मान्यता में शरीर, राग और

आत्मा के बीच भेदविज्ञान का डंडा पड़ा है, जिससे अन्य समस्त प्रकार का राग मंद हो गया है। ज्ञानी को राग का राग नहीं होता। एक आत्मा के ज्ञानानन्दस्वरूप की जिसे भावना है, वही सम्यग्दृष्टी कहलाता है।

सम्यग्दृष्टी के बाहर का त्याग दिखाई नहीं देता; लेकिन अतंर के भोग का त्याग हो गया है। जो मिथ्यादृष्टी त्यागी-मुनि हो, उसे बाहर में कितना भी त्याग हो, लेकिन अंतर में देहादी संयोग मेरे है और रागादि से मुझे लाभ होता है ह्न ऐसी मान्यता पड़ी हो तो वह भोगी है। सम्यग्दृष्टी ने देह और राग से भिन्न अपनी आत्मा को जान लिया है, अत: 96 हजार रानियों का भोग होते हुये भी वह भोग की इच्छा से रहित है।

अनादिकाल से संसारी जीवने ज्ञानानन्द शुद्ध चैतन्यकंद का आश्रय न लेते हुये अविद्या के वशीभूत होकर समस्त पुद्गलों को भोगा और छोडा है, अत: अब उन्हें और भोगने की भावना कैसे होगी ? एकबार ज्ञानानन्द शुद्ध चैतन्यका आश्रय लिया तो उच्छिष्ट भोगों को भोगने की भावना ही नहीं होती।

हे भाई ! यदि तुझे आत्मार्थी बनना है तो परद्रव्यों की ममता छोड़कर अपने में समता धारण करने का अभ्यास कर। यह अभ्यास ही धर्म है, शेष समस्त बाह्यक्रियाओं से कभी धर्म नहीं होता है।

परद्रव्य का एक रजकण भी मेरा नहीं है और रागादि परभावों के साथ मेरा कोई संबंध नहीं है ह्न ऐसी दृष्टिवाले धर्मात्मा जीव को एकबार छोडी हुयी वस्तु को पुन: ग्रहण करने का भाव नहीं आता। उसे तो मात्र चैतन्य में एकाग्र होने की भावना लगी रहती है।

धर्मी जीव अपने अतीन्द्रिय आनन्दस्वरूप शुद्ध आत्मा की प्रतिति-ज्ञान और अनुभव के कारण परपदार्थों के भोग में रुचि नहीं करता। वह विचार करता है कि यह भोग तो मैंने अनंतबार भोगे हैं। अज्ञानदशा में अपनी आत्म वस्तु को भूलकर बाह्य समस्त भोगों को भोगकर छोड दिया है; किन्तु निज ज्ञानानन्द शुद्ध चैतन्य का ज्ञान होते ही अनंतकाल में भोगकर छोडे हुये इन उच्छिष्ट भोगों में मेरी रुचि नहीं है।

अब यहाँ शिष्य प्रश्न करता है कि जीव द्वारा पुद्गल कर्म किस रीति से बांधे

जाते हैं ? जिसके उत्तरस्वरूप आचार्य पूज्यपादस्वामी 31 वीं गाथा में कहते हैं ह्न

कर्म कर्महिताबन्धि जीवो जीवहितस्पृह:।
स्व-स्वप्रभावभूयस्त्वे स्वार्थं को वा न वांछति।।31।।

कर्म, कर्म का हित चाहता है और जीव, जीव का हित चाहता है। अपना-अपना प्रभाव बढ़ने पर कौन अपना स्वार्थ नहीं चाहेगा ?

कर्म, कर्म का हित चाहता है ह्न इसमें अज्ञानी जीव कर्म के उदय के वशीभूत होकर अपने को शुद्धस्वरूप का आदर छोडकर कर्म के निमित्त का आदर-सत्कार करता है, उसमें राग-द्वेष करता है। इसे ही अज्ञानी कर्म पर उपकार करता है ह्न ऐसा कहा जाता है।

अज्ञानी को राग-द्वेष से कर्म बंधते है, तब कर्म का हित होता है। कर्म तो जड़ है, वह क्या किसीका हित चाहेगा; लेकिन कहने में यह आता है कि जो कर्म का आदर करता है, उसे कर्म बंधते है और कर्म की वृद्धि हो तो कर्म का हित होता है।

भगवान आत्मा शुद्ध पूर्णानन्द निर्मलनाथ परमात्मा है। हे प्रभु ! तू उसे दूर न देख, वह तेरे समीप ही है। अपने परमेश्वर की ईश्वरता को छोड़कर जो परमें ईश्वरता मानता है, वह कर्म का ही हित करता है और अपना अहित करता है।

मैं कोन हूँ ? कहाँ से आया हूँ ? मेरा स्वरूप क्या है ? ह्न ऐसे अपने अस्तित्व का जिसे भान नहीं है, वह परद्रव्य के आश्रय से अपना अस्तित्व देखता है। कर्म के निमित्त से जो राग-द्वेष, पुण्य-पापादि भाव होते है वे मेरे हैं ह्न ऐसा मानकर जो अपना हित छोड़कर कर्म का हित करता है, उसे कर्म बंधते हैं। अज्ञानी को कर्म के उदय में प्राप्त संयोगों में मोह है, जिससे नवीन कर्मबन्धन होता है, यही कर्म का उपकार कहलाता है।

चैतन्य परमेश्वर का स्वभाव **सिद्ध समान सदा पद मेरो** ह्न ऐसा है। अपने स्वरूप का सत्कार, अवलम्बन, आश्रय छोड़कर कर्म के उदय में सत्कार, अवलम्बन, आश्रय करे तो अज्ञानी जीव कर्म का हित करता है; किन्तु ज्ञानी जीव अपने शुद्ध चैतन्य आत्मस्वरूप का आदर, सत्कार, अवलम्बन करके अपना हित करते है। **(क्रमश:)**

कारणशुद्ध और कार्य शुद्धजीव

परमपूज्य सर्वश्रेष्ठ दिगम्बराचार्य कुन्दकुन्द के प्रसिद्ध परमागम नियमसार की नौ वीं गाथा पर हुए आध्यात्मिकसत्पुरुष श्री कानजीस्वामी के अध्यात्म-रसगर्भित प्रवचनों का संक्षिप्त सार यहाँ दिया जा रहा है।

गाथा मूलत: इसप्रकार है -

जीवा पोग्गलकाया धम्माधम्मा य काल आयासं ।
तच्चत्था इदि भणिदा णाणागुणपज्जएहिं संजुत्ता ।।9।।

विविध गुण पर्यायों से युक्त जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल ह्न ये तत्त्वार्थ कहे हैं।

(गतांक से आगे ...)

स्वभावगति क्रियारूप और विभावगति क्रियारूप से परिणत जीव-पुद्गलों को स्वभावगति का और विभावगति का जो निमित्त है वह धर्म द्रव्य है। जीव और पुद्गल गतिरूप से स्वयं अपने स्वभाव अथवा विभाव से परिणमन करते हैं, उसमें धर्मास्तिकाय मात्र निमित्त है। चौदहवें गुणस्थान के अन्त में जीव ऊर्ध्वगमन स्वभाव से लोकान्त में जाता है, वह जीव की स्वभावगति क्रिया है और संसार अवस्था में कर्म के निमित्त से गमन करता है, वह विभावगति क्रिया है। एक अकेला पुद्गल परमाणु गति करे वह पुद्गल की स्वभावगति क्रिया है तथा पुद्गल स्कंध गमन करे वह पुद्गल (स्कंध के प्रत्येक परमाणु) की विभावगति क्रिया है। इस स्वाभाविक और वैभाविक गतिक्रिया में धर्मद्रव्य निमित्त मात्र है।

लकड़ी चलती है, वहाँ उसका प्रत्येक परमाणु अपनी विभावगति से ही चलता है, हाथ के कारण नहीं; इच्छा के कारण भी नहीं, उसकी गति में धर्मद्रव्य भी निमित्त मात्र है। स्वभावगति हो या विभाव गति, वह है तो अपने से ही और उसमें धर्मद्रव्य निमित्त है तथा वह अमूर्त व अचेतन है।

स्वभावस्थिति क्रियारूप से और विभावस्थिति क्रियारूप से परिणत जीव-पुद्गलों को स्थिति (स्वभावस्थिति अथवा विभावस्थिति दोनों) का निमित्त अधर्मद्रव्य है। स्थिर होना भी एकप्रकार की क्रिया है। सिद्धभगवान लोकाग्र में स्थिर रहते हैं, वह उनकी स्वाभाविक क्रिया है, उसमें अधर्मद्रव्य निमित्त हैं।

सिद्धदशा में जीव स्थिर रहता है, वह जीव की स्वाभाविकस्थिति क्रिया है। और संसार दशा में स्थिर रहता है, वह वैभाविकस्थिति क्रिया है। अकेला परमाणु स्थिर रहे, वह पुद्गल की स्वाभाविक स्थितिक्रिया है और स्कंध स्थिर रहे वह पुद्गल (स्कंध के प्रत्येक परमाणु) की वैभाविकस्थिति क्रिया है। इसप्रकार जीव पुद्गल की स्वाभाविक एवं वैभाविक स्थिति क्रिया में अधर्मद्रव्य निमित्त मात्र है।

चौकी पर पुस्तक रखी है, उसमें उस पुस्तक का प्रत्येक परमाणु अपनी-अपनी वैभाविक स्थिति क्रिया से स्थिर है, उसमें अधर्मद्रव्य निमित्त है। उपादान तो प्रत्येक परमाणु का अपना-अपना ही है और उसमें निमित्त अधर्मद्रव्य है ह्न ऐसा अधर्मद्रव्य का स्वभाव है। यह भी अमूर्त व अचेतन है।

पाँच द्रव्यों को अवकाश देना जिसका लक्षण वह आकाश है। यह द्रव्य लोकालोक में व्याप्त, स्वयं क्षेत्रस्वरूप है तथा शेष पाँचो द्रव्यों को अवकाश देता है।

पाँच द्रव्यों के वर्तने में जो निमित्त है, वह काल द्रव्य है। काल द्रव्य स्वयं अपने लिये निमित्त नहीं कहा जाता है। शेष पाँचो द्रव्य स्वयं परिणमन कर रहे हैं, उनमें काल द्रव्य निमित्त है।

इसप्रकार छहों द्रव्य सर्वज्ञ भगवान ने अनादि-अनंत स्वतंत्र देखे है। धर्म-अधर्म-आकाश और काल यह चारों ही अमूर्त अजीव द्रव्य हैं। इन चारों के गुण शुद्ध हैं और पर्यायें भी शुद्ध हैं, उनका रूपातर होता है वह शुद्ध है तथा आकृति भी शुद्ध ही है। उनकी अर्थ-व्यंजन दोनों पर्याय शुद्ध हैं। देखो ! यह चार द्रव्य अकेले परमपारिणामिक स्वभावरूप है, इनकी उपमा देकर आत्मा का परम पारिणामिक स्वभाव और कारणशुद्धपर्याय समझायेंगे।

इन छह द्रव्यों की पहिचान करना व्यवहार श्रद्धा है। आत्मा के भानसहित साधक दशा में ऐसी छह द्रव्यों की श्रद्धा का विकल्प होता है, उसे व्यवहार श्रद्धा कहते है ह्न इसप्रकार छह द्रव्यों का वर्णन करने के पश्चात् उनकी श्रद्धा का फल बतलाते हुए आचार्य श्री पद्मप्रभमलधारीदेव16 वें कलश में कहते हैं ह्न

इति जिनपतिमार्गाम्भोधिमध्यस्थरत्नं-
द्युतिपटलजटालं तद्धि षड्द्रव्यजातम्।

हृदि सुनिशितबुद्धिर्भूषनार्थं विधत्ते–
स भवति परमश्रीकामिनीकामरूप: ।।

इसप्रकार उस षट्द्रव्यसमूहरूपी रत्न को ह्न जो तेज के अम्बार के कारण किरणों वाला हैं और जो जिनपति के मार्गरूपी समुद्र के मध्य में स्थित है उसे ह्न जो तीक्ष्ण बुद्धिवाला पुरुष हृदय में भूषणार्थ (शोभा के लिये) धारण करता है; वह परम पुरुष श्री रूपी कामिनी का वल्लभ होता है अर्थात् जो पुरुष अन्तरंग में छह द्रव्यों की यथार्थ श्रद्धा करता है वह मुक्तिलक्ष्मी का वरण करता है।

यहाँ छह द्रव्यों को रत्न की उपमा दी है, वे सभी द्रव्य निज-निज पर्यायों से शोभित है, जिनेन्द्रदेव के मार्ग के अतिरिक्त यह छह द्रव्य अन्यत्र नहीं है; अत: जिनमार्गरूपी जो समुद्र उसके मध्य में इन छह द्रव्यों के समूहरूपी रत्न रहते हैं। जो तीक्ष्णबुद्धिवाले पुरुष अपने ज्ञान में इन छह द्रव्यों को जानते हैं, वे पुरुष मुक्तिलक्ष्मी को पाते हैं। इन छह द्रव्यों का यथार्थ ज्ञान आत्म-शोभा का कारण है। छह द्रव्यों की यथार्थ श्रद्धा करनेवाला मोक्ष पाता हैं।

ज्ञान का स्वभाव इन छह द्रव्यों को ज्ञेय करने का है ह्न ऐसे ज्ञानस्वभाव की प्रतिती करने पर उसमें छहों द्रव्यों की प्रतिती का समावेश हो जाता है, इसलिये जिस तिर्यंच को आत्मा के ज्ञानस्वभाव की श्रद्धा है, उसे भी छह द्रव्य के श्रद्धा की सूक्ष्मबुद्धि है। ज्ञान के तेज में छहों द्रव्य ज्ञात होते हैं; क्योंकि छह द्रव्यों में ज्ञान का ज्ञेय होने की शक्ति हैं ह्न ऐसे छह द्रव्यों को जो जीव अपनी आत्मा की शोभा के लिये जानकर श्रद्धा करता है वह मोक्ष प्राप्त करता है।

सर्वज्ञकथित छह द्रव्यों का वर्णन किया; परन्तु यहाँ जीव का अधिकार है, अत: जीव का विशेष वर्णन अब करते हैं।

जीवो उवओगमओ उवओगो णाणदंसणो होइ।
णाणुवओगो दुविहो सहावणाणं विहावणाणं ति ।।10।।

जीव उपयोगमय है। उपयोग ज्ञान और दर्शन है। ज्ञानोपयोग दो प्रकार का है ह्न स्वभावज्ञान और विभावज्ञान।

यहाँ उपयोग का लक्षण कहा है। जीव उपयोगमय है, उपयोग का अर्थ परिणाम समझना। आत्मा चेतन है और चैतन्य उसका स्वभाव है। उस चैतन्य को अनुसरण

करके वर्तनेवाला परिणाम उपयोग है।

देखो, उपयोग की यह व्याख्या सब प्रकार के उपयोगों में लागू पड़ेगी। उपयोग किसी परद्रव्य या इन्द्रियों का अवलम्बन नहीं करता, वह तो चैतन्य का ही अनुसरण करके होता है।

उपयोग धर्म है और जीव धर्मी है। उपयोग स्वभाव की पर्याय है, अतः वह धर्म है और जीव पर्याय को धारण करनेवाला है; अतः वह धर्मी है। जितने भी उपयोग के प्रकार होते हैं वे किसी दूसरे से नहीं होते, अपितु जीव के ही धर्म है। उपयोग चाहे मतिज्ञानोपयोग हो या त्रिकालशुद्ध हो ह्न वे सभी उपयोग जीव के धर्म हैं और जीव धर्मी है। उपयोग का त्रिकाल एकरूप परिणाम तथा बारह प्रकार के परिणाम ह्न उन सब उपयोगों का इसमें वर्णन है। चैतन्य का अनुसरण करके वर्तनेवाले परिणामों के कुल चौदह प्रकार हैं ह्न जिनमें दो तो त्रिकालरूप उपयोग, तथा आठ ज्ञान और चार दर्शन ह्न इस भाँति चौदह भेद हैं।

चैतन्य को अनुसरण करने वाला परिणाम उपयोग है, यहाँ पर्याय की व्याख्या है ह्न गुण और द्रव्य का यहाँ वर्णन नहीं है। यहाँ उपयोग धर्म है और उसको धारण करनेवाला जीव धर्मी है। इन्द्रियों अथवा मन के कारण मति-श्रुतज्ञान का उपयोग होता हो ह्न ऐसी बात नहीं है, वह उपयोग भी जीव का धर्म है। उपयोग धर्म है और जीव धर्मी है। इन दोनों में दीपक और प्रकाश जैसा सम्बन्ध है। जैसे दीपक धर्मी और प्रकाश उसका धर्म। दीपक का प्रकाश किसी पर के कारण नहीं है; उसी प्रकार आत्मा चैतन्यदीपक है और उपयोग उसका प्रकाश है। आत्मा है धर्मी और उपयोग उसका धर्म है।

वह उपयोग ज्ञान और दर्शन के भेद से दो प्रकार का है। उनमें से ज्ञानोपयोग के भी दो प्रकार हैं। एक स्वभावज्ञानोपयोग और दूसरा विभावज्ञानोपयोग।

स्वभावज्ञानोपयोग अमूर्त, अव्याबाध, अतीन्द्रिय और अविनाशी है। इसमें कारण और कार्य दोनों प्रकार के स्वभावज्ञान आ जाते हैं। भगवान आत्मा उपयोगस्वरूप है। केवलज्ञान वह कार्यस्वभावज्ञानोपयोग है ह्न वह प्रकट होने के बाद अविनाशी ज्यों-का-त्यों ही रहता है। **(क्रमश:)**

शक्तियों का संग्रहालय : भगवान आत्मा

परमपूज्य सर्वश्रेष्ठ दिगम्बराचार्य कुन्दकुन्द के प्रसिद्ध परमागम समयसार नामक ग्रन्थाधिराज पर परमपूज्य आचार्य अमृतचन्द्रदेव ने 'आत्मख्याति' नामक संस्कृत टीका लिखी है। उसके अन्त में परिशिष्ट के रूप में अनेकान्त का विस्तृत वर्णन करते हुये आत्मा की 47 शक्तियों का वर्णन किया है, साथ ही अनेक कलश भी लिखे हैं। उन पर गुरुदेवश्री कानजीस्वामी ने समय-समय पर अतिमहत्त्वपूर्ण प्रवचन किये हैं, जो पाठकों के लाभार्थ क्रमशः प्रस्तुत हैं।

(गतांक से आगे .....)

अब पण्डित जयचन्दजी छाबड़ा भाषा टीका पूर्ण करते हुए कहते हैं ह्न

(सवैया)

कुन्दकुन्दमुनि कियो गाथाबंध प्राकृत है
प्राभृतसमय शुद्ध आतम दिखावनूँ,
सुधाचन्द्रसूरि करी संस्कृत टीका वर
आत्मख्याति नाम यथातथ्य भावनूं।
देश की वचनिका में लिखि जयचन्द पढ़ै
संक्षेप अर्थ अल्प बुद्धिकूं पावनूं,
पढ़ो-सुनो मन लाय शुद्ध आतमा
लखाय ज्ञानरूप गहौ चिदानन्द दरसावनूं।।

(दोहा)

समयसार अविकार का, वर्णन कर्ण सुनन्त।
द्रव्य-भाव-नोकर्म तजि, आतमतत्त्व लखन्त।।

इसप्रकार इस समयप्राभृत अथवा समयसार नामक शास्त्र की आत्मख्याति नामक संस्कृत टीका की देशभाषामय वचनिका लिखी है। इसमें संस्कृत टीका का अर्थ लिखा है और अति संक्षिप्त भावार्थ लिखा है, विस्तार नहीं किया है। संस्कृत टीका से न्याय से सिद्ध हुए प्रयोग हैं। यदि उनका विस्तार किया जाय तो अनुमान प्रमाण के पाँच अंग प्रतिज्ञा, हेतु, उदाहरण, उपनय और निगमन पूर्वक-स्पष्टता से

व्याख्या करने पर ग्रन्थ बहुत बढ़ जाय; इसलिए आयु, बुद्धि, बल और स्थिरता की अल्पता के कारण, जितना बन सकता है उतना, संक्षेप से प्रयोजनमात्र लिखा है। इसे पढ़कर भव्यजन पदार्थ को समझना। किसी अर्थ में हीनाधिकता हो तो बुद्धिमानजन मूल ग्रन्थानुसार यथार्थ समझ लेना। इस ग्रन्थ के गुरुसम्प्रदाय का (गुरु परम्परागत उपदेश का) व्युच्छेद हो गया है; इसलिए जितना हो सके उतना यथाशक्ति अभ्यास हो सकता है; तथापि जो स्याद्वादमय जिनमत की आज्ञा मानते हैं; उन्हें विपरीत श्रद्धान नहीं होता। यदि कहीं कोई अर्थ को अन्यथा समझना भी हो जाय तो विशेष बुद्धिमानों का निमित्त मिलने पर वह यथार्थ हो जाता है। जिनमत के श्रद्धालु हठग्राही नहीं होते।

अहाहा ! जैसा चैतन्यदेव प्रभु आत्मा है, वैसा ही शुद्धात्मा का स्वरूप आचार्य कुन्दकुन्ददेव ने इस समयसार में प्रसिद्ध किया है और आचार्य अमृतचन्द्र ने आत्मख्याति नाम की संस्कृत टीका रची है तथा पण्डित जयचन्दजी छाबड़ा ने वर्तमान में चलती हिन्दी भाषा में संस्कृत टीका का अर्थ एवं सरल, संक्षिप्त भावार्थ लिखा है, जिससे अल्पबुद्धि जीव भी समझ सकते हैं। संस्कृत टीका में न्याय से सिद्ध हुए प्रयोग हैं। अब अन्त मंगल के प्रयोजन से पंचपरमेष्ठी को नमस्कार करके शास्त्र को समाप्त करते हैं ह्न

मंगल श्री अरहन्त घातिया कर्म निवारे।
मंगल सिद्ध महन्त कर्म आठों परजारे।।
आचारज उवज्झाय मुनि मंगलमय सारे।
दीक्षा शिक्षा देय भव्यजीवनिकूं तारे।।
अठबीस मूलगुण धार जे सर्वसाधु अनगार हैं।
मैं नमूँ पंचगुरुचरणकूं मंगल हेतु करार हैं।।

अहा ! जिन्होंने चार घातिकर्मों का नाश करके परमात्मपद प्राप्त किया है, वे अनन्तचतुष्टयधारी अरहन्त हैं। जो शरीररहित होकर अकेले पूर्ण आनन्दमूर्ति-ज्ञानमूर्ति आत्मरूप हुए हैं और जिन्होंने सर्व पराश्रय का नाश किया है, वे सिद्ध भगवान हैं तथा वीतरागी संत, आत्मा के आनन्द के साधक आचार्य, उपाध्याय और मुनि ह्न ये पंच परमेष्ठी मंगलमय हैं।

आचार्य दीक्षा-शिक्षा देकर भव्यजीवों को तारते हैं। 28 मूलगुणों को धारण

करनेवाले सर्वसाधु अनगार हैं। ये मंगल स्वरूप होने से मैं इन पंच परमेष्ठी के चरणों में नमस्कार करता हूँ। पाप का नाश एवं पवित्रता की प्राप्ति में जो निमित्त हैं ह्न ऐसे पंचपरमेष्ठी को यहाँ मंगल कहा है। अब पण्डित जयचन्दजी छाबड़ा अपनी बात करते हैं ह्न

(सवैया इकतीसा)

जैपुर नगरमाँही तेरापंथ शैली बड़ी
बड़े बड़े गुनी जहाँ पढ़ैं ग्रन्थ सार हैं।
जयचन्द्र नाम मैं हूँ तिनिमें अभ्यास किछू
कियो बुद्धिसारू धर्मरागतें विचार हैं।।
समयसार ग्रन्थ ताकी देशके वचनरूप
भाषा करी पढ़ो-सुनौ करो निरधार है।
आपा-पर भेद जानि हेय त्यागि उपादेय
गहो शुद्ध आतमकूँ, यहै बात सार है।।

(दोहा)

संवत्सर विक्रम तणूं, अष्टादश शत और।
चौसठि कार्तिक बदि दशैं, पूरण ग्रन्थ सुठौर।।

जयपुर नगर में जैनों की बहुत भारी संख्या है, उनमें एक तेरापंथियों की बहुत बड़ी शैली (स्वाध्याय करनेवालों का समूह) है, अनेक मन्दिर हैं, बड़े-बड़े गुणीजन धर्मग्रन्थों का अभ्यास करते हैं। उनमें जयचन्द नाम का मैं भी एक व्यक्ति हूँ, जो अपनी भक्ति के अनुसार थोड़ा-बहुत अभ्यास करता हूँ। अपनी बुद्धि के अनुसार देशभाषा में समयसार ग्रन्थ का अर्थ लिखा है। उसे जानो, समझो और निर्णय करो। आपने इस ग्रन्थ को समझा ह्न ऐसा कब कहा जाय? तो कहते हैं कि ह्न जब कहे प्रमाण समझकर अन्तर में स्व-संवेदन करे, अन्दर आनन्द की अनुभूति प्रगट करे तब यह कहा जायेगा कि हमने पढ़ा है, सुना है एवं समझा है। इसलिए स्व-पर का भेद जानकर हेय को त्याग दो और शुद्ध आत्मा को ग्रहण करो। बस, इस सम्पूर्ण कथन का इतना ही सार है। इसके बिना शेष सब श्रम व्यर्थ है।

इसप्रकार इस महान ग्रन्थ पर परमोपकार की भावना रखनेवाले आत्मज्ञसत्पुरुष श्री कानजीस्वामी ने जो सारगर्भित प्रवचन किये, वे यहाँ पूर्ण हुए। **(समाप्त)**

ज्ञान गोष्ठी

सायंकालीन तत्त्वचर्चा के समय विभिन्न मुमुक्षुओं द्वारा
पूज्य स्वामीजी से पूछे गये प्रश्न और स्वामीजी द्वारा दिये गये उत्तर

प्रश्न : परजीवों का जीवन-मरण उनके अपने कारण से होता है, मैं उनका कुछ नहीं कर सकता, मैं तो मात्र जाननेवाला हूँ ह्न ऐसी श्रद्धा रखने से तो जीव के परिणाम निष्ठुर हो जायेंगे ?

उत्तर : भाई ! वस्तु-स्वभाव के अनुसार श्रद्धा करने का फल तो वीतरागता है। चैतन्यस्वभाव की श्रद्धापूर्वक जो दयादि के परिणाम छोड़कर मात्र ज्ञाता-दृष्टा रहेगा तो वीतराग हो जायेगा, फिर अज्ञानी भले ही उसे निष्ठुर कहे। संसार में भी युवा पुत्र मर जाने पर पिता उसके साथ मर नहीं जाता, तो उसे निष्ठुर क्यों नहीं कहते ? यह निष्ठुरता नहीं है, यह तो उसप्रकार का विवेक है।

जगत के जीव भी विकार के लक्ष से निष्ठुर हो जाते है। घर में बीस वर्ष की युवा बहु विधवा हो जाय और साठ वर्ष का श्वसुर विषयों में लिन हो रहा हो; देखो तो सही ! उसके परिणाम कितने निष्ठुर है। अज्ञानी कषाय के लक्ष से निष्ठुर होते है, जबकि ज्ञानी जीव अपने चैतन्यस्वभाव के लक्ष से अपने में एकाग्र होकर विकारीभावों से रहित होकर सिद्ध हो जाते हैं, वीतरागी कहे जाते हैं। जो जीव विकारीभाव करते हैं; वे पर के लिये नहीं करते, किन्तु स्वयं में उस जाति की कषाय होने से वह विकार होता है और जो उसे करनेयोग्य मानता है, वह मिथ्यादृष्टि है। ज्ञानी जीव अपना वीतरागस्वभाव साधने के लिये पर की चिन्ता नहीं करते, यह निष्ठुरता नहीं है, यह तो स्वभावदशा है ह्न वीतरागदशा है।

प्रश्न : यदि मुनियों के वाणी का कर्तृत्व नहीं है, तो वे उपदेश क्यों देते हैं ?

उत्तर : अरे भाई ! मुनिराज उपदेश देते ही नहीं, वे तो उपदेश को जानते हैं। भगवान कहते हैं, जिनवर कहते हैं ह्न ऐसा शास्त्र में कथन आता है; किन्तु भगवान कहते ही नहीं, भगवान तो वाणी को जानते हैं, वास्तव में तो वे 'स्व' को ही जानते हैं। स्व-पर जानना सहज है, पर की अपेक्षा ही नहीं, जानने का स्वभाव ही है। भगवान कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं कि मैं अपने निजवैभव से कहूँगा। तुम प्रमाण करना। अरे भगवान ! वाणी तुम्हारी नहीं है न ? वाणी से ज्ञान भी नहीं होता। भाई ! आहाहा ! गजब बात है, वस्तु का स्वरूप ही अद्भुत है। निमित्त-नैमित्तिक के कथन

एक सर्वज्ञ के मार्ग में ही हैं, अन्यत्र नहीं।

प्रश्न : आप कहते हैं कि शरीर की पर्याय जिसकाल में जो होनी होगी वह होगी, उसमें वैद्य भी क्या करे ? यदि वैद्य रोग मिटा नहीं सकता तो उसे धन्धा छोड़ देना चाहिये।

उत्तर : दृष्टि अन्तर्मुख रखनी चाहिये। राग आवे, लोभ आवे, किन्तु वजन उसके ऊपर नहीं जाना चाहिये। वजन तो अन्दर का ही होना चाहिये।

प्रश्न : दृष्टि इसतरफ रखकर धन्धा करे न ?

उत्तर : धन्धा करे क्या ? करना ह्न ऐसा नहीं; राग और लोभ का भाव आवे उसे मात्र जानना।

प्रश्न : मानना कुछ और करना कुछ ?

उत्तर : होना होता है, वही होता है ह्न ऐसा मानना।

प्रश्न : एक परमाणु दूसरे परमाणु को छूता नहीं, तो दूध की कड़ाही में एक बूँद विष मिला देने पर सारा दूध विषरूप हो जाता है ह्न उसका क्या कारण है ?

उत्तर : प्रत्येक परमाणु अपना कारण-कार्य है। दूध के परमाणु विषरूप स्वयं से परिणमित हुए है; विष के रजकण से नहीं। आहाहा ! एक द्रव्य दूसरे द्रव्य को छूता नहीं ह्न यह बात वीतराग की माने कौन ?

प्रश्न : क्या जीव का अजीव के साथ कारण-कार्य भाव सिद्ध नहीं होता ?

उत्तर : नहीं होता। प्रत्येक द्रव्य का परिणाम अपने से होता है, उसे दूसरा द्रव्य नहीं कर सकता। जीव अपने परिणाम से उत्पन्न होता है, उसे अजीव के साथ कारण-कार्य भाव सिद्ध नहीं होता। होंठ चलते हैं, वाणी निकलती है, उनका कर्त्ता जीव है ह्न ऐसा सिद्ध नहीं होता। दाल, भात, शाक होता है ह्न उसे जीव नहीं कर सकता। रोटी का टुकड़ा होता है, उसे जीव नहीं कर सकता। शरीर के अवयवों का हलन-चलन होता है, उसका कर्त्ता जीव है ह्न ऐसा सिद्ध नहीं होता। हाँ, उन अजीव के सभी कार्यों का कर्त्ता पुद्गल द्रव्य है ह्न ऐसा सिद्ध होता है। आहाहा ! सूक्ष्म बात है भाई ! वीतरागकथित वस्तु को समझे तो संसार से पार हो जाय ह्न ऐसी बात है।

प्रश्न : पर से अपना कार्य नहीं होता ह्न ऐसा निर्णय करने से क्या लाभ ?

उत्तर : पर से अपना कार्य होता ही नहीं, ऐसा निर्णय करते ही परावलम्बी श्रद्धा तो छुट ही जाती है, इतना तो लाभ है ही; तत्पश्चात् स्व-तरफ बढ़ना रह जाता है, तथा स्व के आश्रय का पुरुषार्थ करते ही सम्यग्दर्शन हो जाता है। ●

गिरनार रक्षार्थ देशव्यापी आन्दोलन

सिद्धक्षेत्र गिरनारजी पर विगत एक वर्ष से चले आ रहे उपसर्ग तथा कुछ असामाजिक तत्त्वों द्वारा किये गये अवैध निर्माण को लेकर निर्मित श्री गिरनारजी तीर्थ राष्ट्र-स्तरीय एक्शन कमेटी के अन्तर्गत जैन समाज ने देश व्यापी आन्दोलन शुरु कर दिया है। इस आन्दोलन की प्रथम कड़ी के रूप में दिनांक 14 अगस्त को सामूहिक पूजन का आयोजन कर क्षेत्र की रक्षा के लिये संकल्प पत्र भरे गये तथा दिनांक 11 सितम्बर, 2005 को गिरनार तीर्थ की रक्षार्थ सम्पूर्ण राष्ट्र में सामूहिक पूजन एवं एक दिन का उपवास रखा गया।

एक्शन कमेटी के अध्यक्ष श्री एन.के.सेठी ने आगामी विस्तृत कार्ययोजना पर प्रकाश डाला। साथ ही कमेटी के सदस्य एवं विद्वत परिषद् के राष्ट्रीय अध्यक्ष डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल ने सभी जैनबन्धुओं से इस आयोजन में भाग लेकर गिरनार तीर्थ की रक्षा के लिये अपना सहयोग प्रदान करने की प्रेरणा दी। आगामी योजनायें एवं जानकारी समय-समय पर प्रकाशित की जायेंगी।

महासमिति के नवनिर्वाचित राष्ट्रीय अध्यक्ष विवेक काला को शुभकामनायें !

दिनांक 7 अगस्त, 2005 को अतिशय क्षेत्र पदमपुरा, जयपुर में दिगम्बर जैन महासमिति के राष्ट्रीय अध्यक्ष हेतु सम्पन्न हुये चुनाव में जयपुर के प्रसिद्ध रत्नव्यवसायी, समाजसेवी श्री विवेक काला को सर्वसम्मति से दिगम्बर जैन महासमिति का अध्यक्ष चुना गया। आप अनेक धार्मिक, सामाजिक, व्यावसायिक संस्थाओं के पदाधिकारी हैं।

आपके द्वारा दिगम्बर जैन समाज को नई दिशा मिले इसी भावना के साथ जैनपथप्रदर्शक परिवार की ओर से आपको हार्दिक शुभकामनायें !

सिद्धचक्र महामण्डल विधान सम्पन्न

ग्वालियर (म.प्र.) : यहाँ तेरहपंथी धर्मशाला, नई सड़क में 10 से 17 अगस्त तक श्री सिद्धचक्र विधान का आयोजन श्री दि. जैन जय जिनेन्द्र प्रेरणा मण्डल एवं श्री दि.जैन मुमुक्षु मण्डल ग्वालियर के संयुक्त तत्त्वावधान में हुआ।

इस अवसर पर ब्र. सुमतप्रकाशजी खनियांधाना, पण्डित वीरेन्द्रकुमारजी जैन आगरा एवं पण्डित संजीवकुमारजी गोधा जयपुर के प्रवचनों एवं कक्षाओं का लाभ मिला। विधि-विधान के समस्त कार्य ब्र.अभिनन्दनकुमारजी खनियांधाना के निर्देशन में पण्डित महेन्द्रजी शास्त्री इन्दौर एवं पण्डित अभिनयजी शास्त्री जबलपुर ने सम्पन्न कराये। **ह्न शीतलप्रसाद जैन**

धन्यवाद !

श्रीमती कस्तुराबाई रगबिया धर्मपत्नी स्व. श्री कन्हैयालालजी रगबिया, मन्दसौर (म.प्र.) की ओर से वीतराग-विज्ञान (मासिक) को **परम संरक्षक** के रूप में 15,000/- रुपये प्रदान किये गये; एतदर्थ बहुत-बहुत धन्यवाद ! **ह्न प्रबन्ध सम्पादक**

पाठशाला निरीक्षण सम्पन्न

श्री टोडरमल दिगम्बर जैन सिद्धान्त महाविद्यालय के स्नातक पण्डित अनिलकुमारजी बेलोकर, सुलतानपुर द्वारा दिनांक 15 जुलाई से 07 अगस्त, 2005 तक उत्तरप्रदेश प्रान्त में संचालित वीतराग-विज्ञान पाठशालाओं में खेकड़ा, मेरठ, खतौली, मुजफ्फरनगर, देवबन्द, सरहानपुर, सुलतानपुर, नकुड, रामपुर मणिहारन, धामपुर, आगरा, एत्मादपुर, फिरोजाबाद, सिरसागंज, शिकोहाबाद, इटावा, जसवन्तनगर, करहल, भोगाँव, कुरावली, एटा, रूड़की आदि लगभग 25 स्थानों का निरीक्षण किया गया।

इसी श्रृंखला में दिनांक 11 अगस्त से 2 सितम्बर,05 तक राजस्थान में भीलवाड़ा, प्रतापगढ़, बांसवाड़ा, चित्तौडगढ़ जिल्हों की 21 पाठशालाओं का निरीक्षण किया गया।

सभी स्थानों के विद्यार्थियों को श्री वीतराग-विज्ञान विद्यापीठ परीक्षा बोर्ड, जयपुर के ग्रीष्मकालीन एवं शीतकालीन परीक्षा में सम्मिलित होने के लिये प्रेरित किया गया तथा बंद पाठशालाओं को पुनर्स्थापित कर उनके संचालन के लिये योग्य निर्देश दिये। अधिकांश स्थानों पर आपके प्रवचन एवं कक्षाओं के माध्यम से धर्मप्रभावना हुयी। ह्न **ओमप्रकाश आचार्य**

आगामी कार्यक्रम...

समयसार सप्ताह का आयोजन

नई दिल्ली : सिद्धान्त चक्रवर्ती आचार्य श्री विद्यानन्दजी के पावन सान्निध्य में रविवार, दिनांक 16 अक्टूबर से शनिवार, दिनांक 22 अक्टूबर, 2005 तक समयसार सप्ताह का आयोजन किया जा रहा है। इस आयोजन में मुख्य वक्ता के रूप में श्री अखिल भारतवर्षीय दिगम्बर जैन विद्वत्परिषद् के अध्यक्ष तत्त्ववेत्ता **डॉ. हुकमचन्दजी भारिल्ल** के समयसार पर तलस्पर्शी व्याख्यान कुन्दकुन्द भारती स्थित खारवेल भवन में होंगे। इस अवसर पर विषय से सम्बन्धित शंका-समाधान भी रखा जायेगा। ह्न **अखिल बंसल**

पं. रतनचन्द भारिल्ल को आ. अमृतचन्द्र पुरस्कार

जैनसमाज के दैदीप्यमान नक्षत्र, लब्ध प्रतिष्ठ विद्वान, अनेकों पुस्तकों के लोकप्रिय लेखक, श्री टोडरमल दि. जैन सिद्धान्त महाविद्यालय के प्राचार्य अध्यात्म रत्नाकर पण्डित रतनचन्दजी भारिल्ल, जिनका गत 16 जनवरी, 2005 को राष्ट्रीय स्तर पर सार्वजनिक सम्मान एवं सम्मान में प्रकाशित रतनदीप ग्रन्थ का लोकार्पण हुआ था, उनके साहित्य एवं शिक्षा के क्षेत्र में किये विशेष अवदान के लिए नव प्रतिष्ठापित आ. अमृतचन्द्र पुरस्कार सिद्धान्त चक्रवर्ती आचार्य श्री विद्यानन्दजी मुनिराज के पावन सान्निध्य में दिल्ली में प्रदान किया जायेगा। सम्मान स्वरूप उन्हें एक लाख रुपये एवं प्रशस्तिपत्र खारवेल भवन में प्रदान किया जायेगा। ह्न **अखिल बसंल**

बैंकाक में धर्मप्रभावना

बैंकाक : यहाँ दिनांक 21 अगस्त, 2005 को रक्षाबन्धन पर्व के उपलक्ष में श्री टोडरमल महाविद्यालय के स्नातक पण्डित रूपेशकुमारजी शास्त्री, चिचोली द्वारा विशेष प्रयत्नपूर्वक प्रात: सामूहिक पूजन का आयोजन किया गया। पश्चात् पं. रूपेशजी द्वारा प्रासंगिक प्रवचन के अतिरिक्त एक प्रवचन सम्यग्दर्शन विषय पर भी हुआ। इसी अवसर पर यहाँ श्री दिगम्बर जैन फैडरेशन एवं श्री वीतराग-विज्ञान पाठशाला की स्थापना की गई। लगभग 77 साधर्मी भाई-बहिनों ने इस कार्यक्रम में धर्मलाभ प्राप्त किया। ज्ञातव्य है कि बैंकाक दि. जैन समाज के इतिहास में इसप्रकार के कार्यक्रम का प्रथम ही आयोजन किया गया।

वैराग्य समाचार

1. **तलोद निवासी** श्री ताराचन्दजी मफतलालजी गांधी का दिनांक 16 अगस्त, 2005 को शांतपरिणामपूर्वक देहावसान हो गया है। गुरुदेवश्री द्वारा प्राप्त तत्त्वज्ञान से जुड़कर उसके प्रचार-प्रसार हेतु आप आजीवन संलग्न रहे। साथ ही अनेक संस्थाओं को आपके द्वारा आर्थिक सहयोग भी प्रदान किया गया। आपकी स्मृति में को 500/-रुपये प्राप्त हुये।

2. **भीलवाड़ा निवासी** श्री चांदमलजी पाटोदी का दिनांक 26 अगस्त, 2005 को शांतभावपूर्वक देहावसान हो गया है। आप अत्यन्त धर्मप्रेमी एवं स्वाध्यायप्रिय व्यक्ति थे। आपकी स्मृति में आपके बडे भाई श्री ज्ञानमलजी की ओरसे को 500/- रुपये प्राप्त हुये।

3. **राजकोट निवासी** श्री भरतभाई एवं कमलेशभाई की मातुश्री श्रीमती रेवाबेन नागरदास टीम्बडीया का 88 वर्ष की उम्र में दिनांक 25 जुलाई को कोलकाता में देहावसान हो गया। पूज्य गुरुदेवश्री के सान्निध्य के फलस्वरूप ही आप जीवनपर्यंत तत्त्वज्ञान से जुडी रही।

4. **गोहाटी (आसाम) निवासी** श्री भंवरीलालजी सरावगी (गंगवाल) का देहावसान हो गया है। आप धार्मिक प्रवृत्ति के थे तथा कवि के रूप में पहिचाने जाते थे। आपकी स्मृति में आपकी धर्मपत्नी श्रीमती मणीप्रभाजी की ओर से कुल 500/- रुपये प्राप्त हुये हैं।

दिवंगत आत्मायें शीघ्र ही अभ्युदय को प्राप्त हों ह्न यही कामना है।

अवश्य लाभ लेवें

साधना चैनल पर डॉ. हुकमचन्दजी भारिल्ल के प्रवचन प्रतिदिन रात्रि 10.20 से 10.40 बजे तक प्रसारित हो रहे हैं। प्रवचन के प्रसारण में किसी वजह से 5-10 मिनिट की देर भी हो सकती है।

यदि निर्धारित समय से 10 मिनिट बाद तक भी प्रवचन प्रारंभ नहीं हो तो श्री पीयूषकुमारजी शास्त्री से 094140 79772 या (0141) 2705581, 2707458 नं. पर सम्पर्क करें।

पण्डित टोडरमल सर्वोदय ट्रस्ट, जयपुर द्वारा आयोजित

ज्ञानतीर्थ श्री टोडरमल स्मारक भवन, जयपुर में

आठवाँ आध्यात्मिक शिक्षण-शिविर

(गुरुवार, 6 अक्टूबर से शनिवार, 15 अक्टूबर 2005 तक)

आपको सूचित करते हुये अत्यन्त हर्ष हो रहा है कि श्री टोडरमल स्मारक भवन , जयपुर में गुरुवार, दिनांक 6 अक्टूबर से शनिवार, दिनांक 15 अक्टूबर 2005 तक आध्यात्मिक शिक्षण-शिविर एवं विधान का आयोजन अनेक विशिष्ट मांगलिक कार्यक्रमों सहित किया जा रहा है।

शिविर में अन्तर्राष्ट्रीय ख्यातिप्राप्त तार्किक विद्वान डॉ. हुकमचन्दजी भारिल्ल जयपुर, पण्डित रतनचन्दजी भारिल्ल जयपुर, ब्र.यशपालजी जैन बेलगाम, पण्डित अभयकुमारजी शास्त्री देवलाली, पण्डित राजेन्द्रकुमारजी जैन जबलपुर, पण्डित शांतिकुमारजी पाटील जयपुर, पण्डित संजीवकुमारजी गोधा जयपुर आदि अनेक विशिष्ट विद्वानों का प्रवचन, कक्षाओं एवं तत्त्वचर्चा के माध्यम से धर्मलाभ मिलेगा। साथ ही व्याख्यानमाला के माध्यम से अन्य अनेक विद्वानों द्वारा विविध विषयों के व्याख्यानों का लाभ भी प्राप्त होगा।

सम्पूर्ण कार्यक्रम ब्र. जतीशचन्दजी शास्त्री सनावद एवं पण्डित पूनमचन्दजी छाबड़ा इन्दौर के कुशल निर्देशन में सम्पन्न होंगे।

सभी साधर्मी बन्धुओं को ऐसे मांगलिक अवसर पर सपरिवार एवं इष्ट मित्रों सहित पधारकर धर्मलाभ लेने हेतु हमारा वात्सल्यपूर्ण हार्दिक आमंत्रण है।

निवेदक

समस्त ट्रस्टीगण

पण्डित टोडरमल सर्वोदय ट्रस्ट, जयपुर